गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर का उपन्यास
गोरा—एक सर्वेक्षण

❑ डॉ० सत्य पाल श्रीवत्स

विश्वविख्यात युग द्रष्टा बहुमुखी प्रतिभा के धनी, मनीषी गुरुदेव रबीन्द्रनाथ टैगोर का बंगला और भारतीय साहित्य ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य तथा बुद्धिजीवी समाज में आदरणीय स्थान है। इनकी कृतियों में 119 कहानियां, 12 उपन्यास, 40 नाटक, 3000 कविताएं, कई निबन्ध, संस्मरण, अनेक बालसाहित्य संबंधी रचनाएं बंगला साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। इनके अतिरिक्त इनकी चित्रकला एवं कृतियों की संख्या 2500 है। इनके द्वारा स्थापित विश्व भारती (शान्तिनिकेतन) विश्वविद्यालय संसार-भर के विश्वविद्यालयों से भिन्न होने से अपनी विश्वप्रसिद्ध पृथक पहचान बनाए हुए है। इन्होंने जब अपनी अनूठी कृति गीतांजलि का स्वयं ही अंग्रेज़ी में अनुवाद किया तो उसे इतनी अद्‌भुत रचना माना गया कि उसे नोबल पुरस्कार के लिए उपयुक्त समझ कर सम्मानित किया गया।

इनके बारह उपन्यासों में गोरा उपन्यास सब से बड़ा भी और श्रेष्ठ भी समझा जाता है। जब यह प्रकाशित हुआ था तो कई आलोचकों और साहित्यकारों ने भले ही अपने पक्षपाती दृष्टिकोण के कारण इसे मान्यता देने में आनाकानी की हो, पर निष्पक्षता से नीर-क्षीर विवेक रखने वालों ने निस्सन्देह इसे सर्वश्रेष्ठ रचना ही नहीं माना था, बल्कि इसे तत्कालीन भारतीय कथा साहित्य का 'महाभारत' नाम देकर इसे गरिमा प्रदान की थी। इस उपन्यास की रचना इन्होंने अगस्त 1907 ई० में आरम्भ करके मार्च 1910 ई० में सम्पन्न की थी। उन्हीं दिनों इनकी 'गीतांजलि' की रचना पूर्ण हुई थी। उस समय के प्रसिद्ध बंगाली समाचार पत्र 'प्रवासी' के संपादक रबीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के अनुरोध पर इन्होंने उस पत्र में उपन्यास को किश्तों में छपवाना मान लिया था।

अनुमान है कि इस उपन्यास की परिकल्पना की पृष्ठ भूमि में गुरुदेव की सोच में उनके समकालीन भारतीय समाज पर विदेशी साम्राज्यवाद द्वारा किये जा रहे अत्याचारों द्वारा होने वाली दयनीय स्थिति की तस्वीर थी, जिसे उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से प्रबुद्ध समाज के कान खोलने का मुख्य उद्देश्य बनाया था। वस्तुत: उस समय भारतीय समाज अति संकटापन्न संक्रान्ति काल से गुजर रहा था। साम्राज्यवाद के दमन चक्र का शिकार भारतीय समाज ऊंच-नीच, जात-पात के भेदभाव के कारण फैली हुई घृणा, निरक्षरता तथा छुआछूत की बीमारी से ग्रस्त था, परन्तु साथ ही साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादी कूटनीति के अन्यतम घटक मैकाले की भारतीय युवा वर्ग को अंग्रेज़ी

भाषा की शिक्षा द्वारा काले अंग्रेज़ या अपना प्रशासन चलाने के लिए मात्र बाबू-क्लर्क बनाने की गहरी चाल भी अपना रंग दिखाने लग पड़ी थी। इस नीति से भी सर्वथा विपरीत स्थिति उत्पन्न हो रही थी। अर्थात् पश्चिमी सभ्यता-संस्कृति के रंग में रंगा हुआ एक अलग वर्ग उत्पन्न हो रहा था।

धर्म के नाम पर आडम्बर और कट्टरवाद के परिणाम स्वरूप अनेकों मत-मतान्तर आपस में आये दिन लड़ाई-झगड़ों में उलझे रहते थे। यदि संक्षेप से कहें तो उस समय भारतीय समाज कई विसंगतियों का शिकार होकर त्राहि-त्राहि करके कराह रहा था। इस संदर्भ में डॉ० रणजीत साहा का यह कहना है-''यह उपन्यास उस दौर की रचना है जब नवीन बुद्धिजीवी वर्ग भारतीय समाज के सांस्कृतिक और बौद्धिक जागरण के महापर्व को दूर या निकट से देख रहा था। अपनी वैचारिक प्रौढ़ता और समसामयिक विरोधाभास से भरपूर भारतीय मानव उन जटिलताओं से भी जूझ रहा था, जिन से चाहे उसे स्पष्ट राह नहीं मिल रही थी, पर जो उस भारतीय राष्ट्रवाद के चरित्र विशेष के विश्लेषण में भी सक्षम था, जिसकी शाखाएं एक और अतिवादी हिन्दुवाद में और दूसरी शाखाएं वैश्विक और उदात्त मानववाद में फैली हों।[1] उस वक़्त गुरुदेव ने अपने चिन्तन के क्षणों में उपनिषद् और अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के नीचे दिये इन अमर सन्देशों को अवश्य ही ध्यान में रखकर विश्व बन्धुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को अपने अन्त:करण में स्थापित किया होगा, ऐसा हमारा अनुमान है और फिर उसी अवधारणा या कल्पना को इस उपन्यास में साकार करने की योजना बना ली होगी। ये अमर सन्देश वाक्य हैं-

उपनिषद्- 'यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

अर्थात्-जो व्यक्ति सारे प्राणियों को अपने में देखे और अपने आपको सभी प्राणियों में देखे वह न तो किसी को तुच्छ समझता है और न ही किसी के साथ घृणा करता है। अथर्ववेद का ऋषि इस अवधारणा से किंच्चित् आगे जाकर यह घोषणा करता है-

जन विभ्रती बहुधा विवा चसम्।
नानाधर्माणि पृथ्वी यथौकसम्।

अर्थात्-अनेकों धर्मों को मानने वालों और अनेकों भाषाएं बोलने वाले मनुष्य या मनुष्यों को यह धरती माता एक घर के समान धारण करती है।

साहित्य अकादमी के पूर्व सचिव प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी का इस संदर्भ में यह कहना बड़ा ही सार्थक एवं उपयुक्त है-

''कवि को यह दुख है कि भारतवासी अपने इस.गौरवमय इतिहास को भुलाकर दासता के सुख से चेहरे पर फैली हुई हंसी को लेकर तथा हाथ जोड़ कर अपने प्रभु के सामने खड़ा है। उसके पैरों पर लोटकर घृणा से सने हुए अन्न को बीनकर वह अपनी मुट्ठी भरता है और खुश मन से

अपने घर लौट जाता है। घर में जाकर गर्व करता है कि उसके पुरुष आर्य थे, जिनसे सारी पृथ्वी थर्राती है।"[2]

उस समय के भारत के इस प्रकार के पतनशील चित्र को अपने प्रातिम चक्षु (vision) में अनुभव करके गुरुदेव के मन में एक भयंकर विद्रोह उबलने लग पड़ा था। परिणामत: उन्होंने 1905 ई. में बंग-भंग आन्दोलन के समय पर एक क्रान्तिकारी कविता रची थी, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं।

ए बार तोर भरा मांगे बना एसे छे।

जब मां बले मासा तरी।

अर्थात्-अब तेरी नदी में बाढ़ आ गई है। इसलिए अब तू भारत माता का नारा लगाते हुए अपनी नाव को चलाना आरम्भ कर दे। इन पंक्तियों के प्रतीकात्मक रूप का भाव यह है कि अब हमारे देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ हो गया है। अब उस में सम्मिलित होकर देश की भलाई के लिए ठोस उपाय करके आत्मविश्वास का श्वास लो। अनेकों विरोधाभासों और विसंगतियों में ग्रस्त भारतीय समाज और उसमें भी बंगला समाज का ऐसा चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत करने के लिए गुरुदेव को इसकी कथावस्तु का ताना-बूना दो समानान्तर और दो लघु प्रासंगिक कथाओं को मिलाकर बुनना पड़ा था। इस विषय में राम जी का कहना बिल्कुल युक्ति-युक्त है-

"pitted against such a social backgound are numerous characters each of which is unique and strongly in didualistic, infact, it is through these various characters and their stories that Tagore looms upon almost every single concern of the society mainly the religious narrow mindedness. Hence, the novel is woven with several sub plots, intermediary stories and events which, though sometimes seem to meander away from the main theme and malign beauty of the plot."

अर्थात्-इस प्रकार की सामाजिक पृष्ठ भूमि से घिरे हुए अनेक चरित्र, जिसमें प्रत्येक अपने ढंग का भी है और पूर्णतया आत्म केन्द्रित भी है। वस्तुत: इन्हीं विविध चरित्रों के माध्यम से तथा उनकी कहानियों के माध्यम से टैगोर हर पहलुओं को जांचते-परखते हैं और विशेषकर धार्मिक संकीर्णता को भी गम्भीरता से अपनी तीक्ष्ण बुद्धि की कसौटी पर परखते हैं। इस प्रकार इस उपन्यास की कथावस्तु छोटी-छोटी मध्यवर्ती कथाओं के साथ-साथ भी बुनी गई है, यद्यपि जिनमें से कुछ प्रधान कथावस्तु के सौन्दर्य में बाधा भी उपस्थित करती हैं।

इस उपन्यास की दो प्रधान समानान्तर कथाओं में से जिसका सम्बन्ध नायक के साथ है, उसी को हम प्रधान कथा मानते हैं। इस प्रधान कथा के मुखिया हैं कृष्ण दयाल, जिसके परिवार में अन्य

सदस्य हैं–उसकी पत्नी आनन्दमयी, बड़ा पुत्र महिम, उसकी बेटी शशिमुखी और छोटा बेटा पालतू धर्म पुत्र गौरमोहन जो गोरा नाम से ही अधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि प्रस्तुत उपन्यास में इसी की मुख्य भूमिका है, अत: यही उपन्यास का नायक है और इसीलिए उपन्यास का शीर्षक भी इसी के नाम से है।

घर का मुखिया कृष्ण दयाल इतना कट्टर एवं अन्धविश्वासी सनातनी हिन्दू है कि वह अधिक समय एक अलग साधना कक्ष में ही व्यतीत करता है, जहां सिवाय उसकी पत्नी आनन्दमयी के कोई अन्य प्रवेश भी नहीं कर सकता है। उसके घर के उसकी पत्नी को मिलाकर अन्य सदस्य सनातनी-हिन्दू विचारों के अनुयायी अवश्य हैं, पर इतने कट्टर एवं अन्धविश्वासी भी नहीं है।

कुछ समय के बाद उनके घर में पहले विनय भूषण, बनाम विनय तथा अवनीश नामक युवकों का आना-जाना भी आरम्भ हो जाता है, क्योंकि ये दोनों ही गोरा के मित्र हैं। इनमें से विनय तो धीरे-धीरे उनके घर का एक प्रकार से अन्तरंग सदस्य ही बन जाता है, इसलिए गोरा का उसके साथ मैत्री भाव और दृढ़ हो जाता है। इसी लिए वह एक बार भावुक हो कर उससे कहता है–"भाई विनय, हम दोनों मरेंगे तो एक ही मौत मरेंगे। हम दोनों एक हैं, हमें कोई अलग नहीं कर सकेगा। कोई अलग करके बांध नहीं सकेगा। (पृ० 78)"

गोरा के ये दोनों मित्र भी सनातनी हिन्दू होते हुए भी कट्टरवाद के सख़्त विरोधी हैं।

जहां तक इस उपन्यास के नायक गोरा के व्यक्तित्व का प्रश्न है वह यथा नाम तथा गुण मुहावरे को पूरी तरह चरितार्थ करता है।

उसका व्यक्तित्व एवं चरित्र अपने ढंग का अनूठा है। वह एक गोरा-चिट्टा, ऊंचा-लम्बा, हट्टा-कट्टा एवं निधड़क युवक है। स्वाभिमान और अड़ियलपन उसमें मानों कूट-कूट कर भरे हुए हैं। वह बाहर से यद्यपि कट्टर हिन्दू प्रतीत होता है, परन्तु भीतर से वह जीव मात्र से प्यार एवं सहानुभूति रखने वाला युवक है। वह अपने आपको गर्व से भले ही हिन्दू धर्म का अनुयायी मानता है, परन्तु अन्य धर्म के मानने वालों के प्रति भी उसके मन में किसी भी प्रकार का द्वेष भाव नहीं है। उसके चरित्र निर्माण में उपन्यासकार ने अपनी औपन्यासिक तकनीक का निश्चय ही भरपूर उपयोग किया हुआ है।

जैसे कि ऊपर संकेत किया ही जा चुका है कि गोरा कृष्ण दयाल दम्पति का पालतू पुत्र होने से उनका धर्म पुत्र है। जिसके माता-पिता आयरिश थे। उसका पिता तो 1857 के समय भड़के विद्रोह (जिसे पहला स्वतन्त्रता संग्राम भी कहा जाता है) के समय विद्रोहियों के भय से भागता-भागता–गोली का शिकार हो गया था, जब कि मां कृष्ण दयाल दम्पति के घर आकर छिप गई थी। उस समय वे लोग इटावा में रहते थे। भाग्य की विडम्बना कि वह आयरिश महिला भी गोरा को जन्म देने के तुरन्त बाद काल-कवलित हो गई थी। परिणामत: जन्मजात शिशु गौर मोहन (गोरा) कृष्ण दयाल दम्पति की दया पर ही रह गया था। उन्होंने भी जीव-मात्र की रक्षा करने के अपने व्रत

का पालन करते हुए गोरा को अपना धर्म पुत्र मान कर उसका पालन-पोषण करना आरम्भ कर दिया था। स्वाभाविक था गोरा के व्यक्तित्व पर कृष्ण दयाल और आनन्दमयी के व्यक्तित्वों का मिश्रित प्रभाव पड़ना, किंचित कट्टरपन और अधिक उदार भाव भी। क्योंकि प्राय: स्वाभाविक रूप में बच्चों पर उनकी माताओं के व्यक्तित्वों का अधिक प्रभाव तो रहता ही है, यद्यपि इस विषय में अपवाद तो मिलते ही हैं। निष्कर्षत: आयरिश दम्पति का वह मातृ-पितृ विहीन गोरा हिन्दू संस्कारों की घुट्टी पाकर वह संस्कारत: हिन्दू युवक के रूप में उभर कर सामने आता है और आनन्दमयी के रूप में उसे ऐसी मां मिलती है जो उसे अपना ममता-भरा प्यार देकर बड़ी लगन और परिश्रम से पाल-पोसकर बड़ा करती है।

क्योंकि एक हिन्दू परिवार में पलकर उन संस्कारों के अनुसार उसका जीवन ढल चुका है, इसीलिए वह गर्व से कहता है-''मैं भी एक हिन्दू हूँ। इस धर्म का मर्म आज भले ही न समझूं, कल तो समझ ही पाऊँगा और अगर ठीक से समझ न भी पाऊं तो भी चलना तो इसी पर होगा। हिन्दू समाज के साथ पूर्व जन्म का सम्बन्ध तोड़ न पाया, तभी तो इस जन्म से ब्राह्मण के घर जन्मा। ऐसे ही जन्म-जन्मान्तर में इसी हिन्दू धर्म और समाज के भीतर से ही उसकी चरम परिणति तक पहुँच पाऊँगा और कभी भूल से भी किसी दूसरे रास्ते की ओर मुड़ा भी तो दोगुणे वेग से लौट आऊँगा।''

इस उपन्यास की कथा वस्तु में दूसरी समानान्तर चलने वाली कथा का मुख्य पात्र परेश बाबू ब्रह्म समाज को तन, मन और धन से समर्पित होता हुआ भी दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति किसी प्रकार का घृणा और उपेक्षाभाव नहीं रखता है। वह बड़ा ही सहनशील और मधुर स्वभाव का व्यक्तित्व है। हां, उसकी पत्नी वरदा सुन्दरी अवश्य कट्टर ब्रह्म समाजी विचारों की अनुगामिनी है, जबकि उस दम्पति की तीनों बेटियां लावण्या, ललिता और लता तथा बेटा सुधीर ब्रह्म समाज के सदस्य अपनी मां के समान इतने कट्टर विचारों के नहीं हैं। उन पर माता की अपेक्षा अपने पिता के उदार स्वभाव का अपेक्षाकृत अधिक असर है। कट्टर ब्रह्म समाजी विचारों के अनुयायी हारान बाबू का बार-बार उनके घर आकर अपने मत का प्रभाव जमाना भी उन बच्चों को प्रभावित नहीं कर सकता है। सिवाय वरदा सुन्दरी के, उस ओर कोई अन्य बिल्कुल भी ध्यान नहीं देता है।

कथावस्तु में दो अन्य अवान्तर कथाओं के सदस्य हैं परेश बाबू के घनिष्ठ सनातनी हिन्दू स्व० रामशरण, उसकी बेटी राधारानी बनाम सुचरिता और उसका छोटा भाई सतीश। इन दोनों बच्चों को अपने मित्र रामशरण की मृत्यु के बाद हारान बाबू अपने घर ले आता है और पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से करता है। इतना ही नहीं सुचरिता की शालीनता और विनम्र स्वभाव के कारण उसके साथ तो अपने बच्चों से भी बढ़कर प्यार करता है। रामशरण भी मरते समय अपनी संपत्ति की वसीयत अपने बच्चों के नाम करके परेश बाबू को सौंपते हुए कह जाता है कि उसके बच्चों का पालन-पोषण अपने बच्चों के समान करते रहना और बाद में सुचरिता का विवाह भी करवा देना और सतीश को भी बड़ा होने पर यथासम्भव व्यवस्थित कर देना।''

वरदा सुन्दरी को उन सनातनी हिन्दू बच्चों का अपने परिवार में रहना कदापि सहन नहीं होता

है इतना ही नहीं जब राय चौधरी परिवार की विधवा महिला, हरिमोहिनी, जो सुचरिता की मौसी भी है, अपने देवरों द्वारा लुटी-पुटी तीर्थ यात्राएं करती हुई उसी परिवार में आकर आश्रय ले लेती है तो वरदा सुन्दरी के जलन भरे रोष की इन्तहा ही हो जाती है। इसलिए अपने परिवार में इनका रहना कदापि सहन नहीं होता है। यही कारण है कि वह सदा जलती-भुनती ही रहती है। वह तभी प्रसन्न हो सकती है यदि सुचरिता हारान बाबू के साथ विवाह भी कर ले और ब्रह्म समाज की दीक्षा भी ले ले परन्तु सुचरिता उसके आग्रह को कभी भी मानने को तैयार नहीं होती है। उधर परेश बाबू एक तो उसे अपने बच्चों से बढ़कर प्यार देता है और दूसरा उसे कभी भी न तो हारान बाबू के साथ विवाह करने को विवश करता है और न ही ब्रह्म समाज में सम्मिलित होने के लिए ही प्रेरित करता है। जब वह उन दोनों भाई-बहन के लिए कलकत्ता में ही उन्हीं के पिता द्वारा सौंपी हुई संपत्ति से खरीदे हुए दो मकान किरायेदारों द्वारा खाली किए जाने पर रहस्य का पर्दा उठा कर कहता है- ''कलकत्ता में तुम्हारे पिता द्वारा मरते समय मुझे जो रुपये सौंपे गये थे, मैंने उसी रकम से तथा उसी से प्राप्त सूद जोड़ कर कलकत्ता में दो मकान खरीदे थे। अब तक उनमें किरायेदार रहते थे, जो अब चले गये हैं। उनमें से सुचरिता, एक मकान तुम्हारे नाम है और दूसरा सतीश के नाम है। तुम्हारा विवाह हो जाने तक तुम दोनों बहन-भाई एक मकान में रह सकते हो और दूसरे में तुम्हारी मौसी हरिमोहिनी। क्योंकि वह बड़ी कट्टर पन्थी और अन्धविश्वासी हिन्दू महिला है, इसलिए उसका अकेले रहना ही उचित है।'' (पृ० 227)

जब वे दोनों भाई-बहन और उनकी मौसी हरिमोहिनी परेश बाबू के कहने पर उन मकानों में चले जाते हैं, तब जाकर वरदा सुन्दरी को शान्ति और राहत की सांस आने लगती है।

उपन्यास का नायक गोरा परेश बाबू के घर एक-दो बार आने पर सुचरिता से परिचित ही नहीं होता है बल्कि उसके मधुर एवं यौवन सुलभ सौन्दर्भ के प्रति आकर्षित भी होता है और दूसरी ओर उत्तर में सुचरिता भी मन-ही-मन उसे चाहने लगती है, परन्तु तो भी गोरा अपने मिशन के प्रति प्रतिबद्धता के कारण अपनी लक्ष्मण रेखा से आगे नहीं बढ़ता है। इसीलिए वह एक स्थान पर उसे कह भी देता है-''मैं अपनी श्रद्धा के द्वारा देश के हृदय को हमारे धर्म-तत्त्व की महत्ता और भक्ति-तत्त्व की गंभीरता के प्रति जागृत करना चाहता हूं। उनकी जो संपत्ति है, उसमें उनका अभिमान जगाना चाहता हूँ। मैं उनका माथा झुकाना नहीं चाहता, न ही यही चाहता हूं कि उनमें अपने प्रतिधिक्कार का भाव पैदा हो और वे सत्य के प्रति अंधे हो जाएं। यही मेरी प्रतिज्ञा है। (पृ० 322)''

दूसरी ओर जब परेश बाबू और वरदा सुन्दरी की मध्यवर्ती बेटी ललिता अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र विचारों की होने के कारण अपनी इच्छा से गोरा के मित्र विनय के साथ अकेली समुन्द्री जहाज में यात्रा करते समय उसके प्रति आकर्षित हो जाती है और इसीलिए वरदा सुन्दरी और हारान बाबू आदि सभी ब्रह्म समाजी क्रोध से लाल-पीले हो जाते हैं, परन्तु परेश बाबू इस विषय में कोई भी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करने के स्थान पर मौन रहना ही उचित समझता है। फिर जब वह विनय के साथ अपनी इच्छा से विवाह भी कर लेती है तो ब्रह्म समाज में एक प्रकार से क्रोध का भयंकर

तूफान ही आ जाता है। उधर इससे पहले जब गोरा को यह ज्ञात होता है कि विनय ललिता से विवाह भी कर रहा है और सम्भवत: ब्रह्म समाज की दीक्षा भी लेने वाला है तो किंचित् क्षुब्ध होकर विनय से कुछ समय के लिए रुष्ट भी हो जाता है। परन्तु जैसे पहले कहा ही जा चुका है कि सुचरिता क्योंकि उदारवादी हिन्दू विचारों में आस्था रखने के कारण ही वरदा सुन्दरी द्वारा विवश किये जाने पर भी कट्टर ब्रह्म समाजी विचारों के अनुयायी हारान बाबू से कदापि विवाह करने के लिए तैयार नहीं होती। इसके विपरीत यदि गोरा तैयार हो जाए तो वह उससे विवाह कर सकती है। इस विषय में उसका केवल गोरा के आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होना ही कारण नहीं है, अपितु गोरा के मन में जो भारतीय समाज की बुराइयां दूर करके सुधार लाने का उद्देश्य एवं 'मिशन' भी है, वह भी एक कारण है। परन्तु जब गोरा विवाह करने के विषय में अपनी बेरूखी ही अभिव्यक्त कर देता है तो वह निराश ही नहीं हो जाती बल्कि सदा के लिए अविवाहित रहने का निश्चय भी कर लेती है। एक बार पुन: वह सुचरिता के साथ बातचीत करता हुआ अपने विचार यों अभिव्यक्त करता है।–''मुझे अब एक कट्टर व्यक्ति मत समझ लीजिएगा। कट्टर लोग और विशेष कर जो लोग कट्टर नहीं भी हो गए हैं, वे हिन्दू धर्म के बारे में जिस ढंग से बात करते हैं, मेरी बात को उस ढंग से न लीजिएगा। भारत वर्ष की अनेक प्रकार की झलक और विचित्र चेष्टाओं के बीच मैं एक गहरा और बहुत ऐक्य देख रहा हूं। उसी ऐक्य के आनन्द से मैं पागल हूं। उसी ऐक्य के आनन्द से भारतवर्ष में जो सब से मूढ़ हैं, उनके साथ हिल-मिल कर धूल में बैठने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होता। भारतवर्ष की इस वाणी को कई समझते हैं, कई नहीं समझते, न सही, मैं अपने भारत के सब लोगों के साथ एक हूं। सभी मेरे हैं। (पृ० 120)

जब कृष्ण दयाल इतना बीमार हो जाता है कि मरनासन्न स्थिति तक पहुँच जाता है, तब वह गोरा को अपने समीप बुलाकर कहता है ''मेरे मरने के बाद तू मेरा श्राद्ध इस लिए नहीं कर पाएगा, क्योंकि तू मेरा पुत्र नहीं है। यह सुनते ही वह घबरा उठता है और झट आनन्दमयी की ओर घूमकर पूछता है।–''मैं इनका पुत्र नहीं हूं ? (पृ० 399) वह उत्तर देती है–''नहीं'' यह सुनकर उसकी स्थिति और भी दुखद हो जाती है। वह जब कृष्ण दयाल से पूछता है–''तब मुझे तुम लोगों ने कहां पाया ?'' कृष्ण दयाल उत्तर देता है–''उस समय गदर था। हम लोग इटावा में थे। तुम्हारी मां ने सिपाहियों के डर से भाग कर रात को हमारे यहां आकर शरण ली थी। तुम्हारा बाप उससे पहले दिन ही लड़ाई में मारा गया था। उनका नाम..... यह सुनकर गोरा गर्ज कर कहता है–''

''रहने दीजिए उनका नाम, मैं नहीं जानना चाहता।'' (पृ० 399)

गोरा की गर्ज सुनकर किंचित् झिझकता हुआ कृष्णदयाल कहता है–''वह आयरिश मैन थे। उसी रात तुम्हारी मां तुम्हें जन्म देकर मर गई थी। तब से तुम्हारा पालन-पोषण हमारे ही घर हुआ (पृ० 399) यह सुनकर गोरा पागलों के समान छटपने लगता है। वह उस समय सोचता है–''अब मैं हिन्दू नहीं हूं।'' परन्तु कुछ समयोपरान्त धैर्य करके अपने आपको संभालता हुआ परेश बाबू के समीप जाकर कहता है–''मेरी बात आप ठीक समझ रहे हैं न ? मैं दिन-रात जो होना चाहता था, पर हो नहीं पा रहा था। आज मैं वही हो गया हूँ। आज सारे भारतवर्ष का हूँ। मेरे भीतर हिन्दू

मुसलमान, बगैरा किसी समाज के प्रति कोई विरोध नहीं। आज इस भारतवर्ष में सब जात मेरी जात हैं सब का अन्न मेरा अन्न है। (पृ० 402)

कुछ समय की चुप्पी के बाद वह पुन: उसी आवेश में परेश बाबू के पास जाकर कहता है– ''मैंने जो कल्पना करके प्रार्थना की थी, उसकी ओर ईश्वर ने ध्यान नहीं दिया–उन्होंने एका-एक अपना ही सत्य सहसा मेरे हाथ देकर मुझे चौंका दिया है। वह यों एका-एक मेरी सारी अपवित्रता को मूल-समूल मिटा देंगे, यह मैं स्वप्न में भी नहीं जानता था। आज मैं ऐसा पवित्र हो गया हूं कि चांडाल के घर भी अब मुझे अपवित्रता का डर न रहा। परेश बाबू, आज सवेरे ही खुलेमन से मैं ठीक भारतवर्ष की गोद में आ बैठा हूँ–मां की गोद किसे कहते हैं, यह आज इतने दिन-बाद मैं पूरी तरह अनुभव कर सका हूँ। (पृ० 403)

उस समय परेश बाबू उसकी उदार और विश्वबन्धुत्व भाव भरी बातें सुनकर इतना प्रभावित हो जाता है, कि भारत माता की विशाल गोदी में आकर सारे भेद-भाव भूलकर सबका भला करने का जो अधिकार उसे प्राप्त हुआ उसमें स्वयं भी सम्मिलित होने की अभिलाषा करने लग पड़ता है। गोरा उसके पवित्र विचार सुनकर फिर कहता है–''आप के पास ही इस मुक्ति का मंत्र है। इसी लिए आज आपको किसी समाज में स्थान नहीं मिल रहा है। आप मुझे अपना शिष्य बना लीजिए। आप मुझे उसी देवता का मंत्र दीजिए जो हिन्दू-मुसलमान, खिस्तान और ब्रह्म समाज सबका है, जिसके मंदिर का द्वार किसी जाति, किसी व्यक्ति के लिए कभी बंद नहीं होता–जो केवल हिन्दू का देवता नहीं है, बल्कि सारे भारतवर्ष का देवता है। (पृ० 403)

उसके बाद गोरा घर आकर देखता है कि मां आनंदमयी बड़ी उदास होकर बैठी हुई है। वह आते ही उस के पैरों पर अपना सिर रखकर कहता है–''मां, तुम्हीं मेरी मां हो। जिस मां को मैं खोजता फिर रहा था, वह तो यहीं मेरे कमरे में बैठी हुई थी। मां, तुम्हारी जात नहीं है। तुम ऊँच-नीच का विवाद नहीं करती। घृणा नहीं करती। तुम केवल कल्याण की प्रतिमा हो। तुम मेरा भारतवर्ष हो। (पृ० 404)

ऊपर दिये गए विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुरुदेव रबीन्द्र ने इस उपन्यास की कथावस्तु का ताना-बाना दो बड़ी समानान्तर और दो छोटी अवान्तर कथाओं को मिलाकर पर्याप्त उलझन तथा घात-प्रतिघातों के साथ बुना है, जिसे बुनना निश्चय ही गुरुदेव जैसे उच्चकोटि के कथाकार का ही काम था। उन्होंने एक ओर उस समय के भारत में फैली हुई साम्प्रदायिकता का भाव, गरीबी, ऊंच-नीच का भाव, जात-पात एवं वर्ग भेद जैसी बुराइयों की सही तस्वीर खींची है जब कि दूसरी ओर व्यापक मानवतावादी और विश्वबन्धुत्व की भावना उजागर करने का यत्न भी किया हुआ है। इस उपन्यास की कथावस्तु का प्रवाह एक पथरीली नदी के प्रवाह के समान अपनी कई पथ-बाधाएं एवं रुकावटें झेलता हुआ अन्त में चरमोत्कर्ष तक पहुँच कर अपने उद्देश्य की पूर्ति भले ही नहीं कर पाता है, परन्तु उसके लिए एक दिशा तो निश्चित कर ही देता है।

इस उपन्यास के सभी पात्र अपनी-अपनी भूमिका बड़ी कुशलता एवं जीवन्तता के साथ निभाने में समर्थ हैं।

इस उपन्यास का अनूदित हिन्दी संस्करण ही हमारे सामने आया है, जो यद्यपि सौभाग्य से हिन्दी के प्रतिष्ठित कवि और साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्सयायन अज्ञेय द्वारा किया हुआ है, परन्तु फिर भी अनुवाद तो अनुवाद ही होता है जबकि मौलिक रचना तो मौलिक रचना ही होती है। स्वाभाविक है कि वह एक आलोचक-पाठक से तो दूर ही है। इसलिए इसकी भाषा के बारे में कुछ न कहते हुए इस का वाक्य-गठन, कथ्य एवं विषय की स्पष्टता, औपन्यासिक शिल्प एवं तकनीक के बारे में कोई बात करें तो उस विषय में कोई दूसरी बात की ही नहीं जा सकती। इसमें प्रतीक तथा बिंब-विधान एवं अलंकार योजना निस्सन्देह उच्चकोटि की है। अत: निष्कर्षत: यह कहने में हमें तनिक भी संकोच नहीं है कि यह उपन्यास एक उच्चकोटि की रचना है और इसी लिए इसे भारतीय कथा साहित्य का ''महाभारत'' कहने से ही यह सिद्ध हो जाता है कि यह एक कालजयी रचना है।

पाद टिप्पणियां-

(1) हिन्दुस्तानी ज़बान, महात्मा गांधी मेमोरियल रिसर्च सेण्टर 7, नेता जी सुभाष रोड़, मुंबई 400002, जुलाई-सितंबर (अंक) पृ० 14-15

(2) वही पृ० 20-22